International Journal of Applied Research 2019; 5(5): 198-200

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2019; 5(5): 198-200
www.allresearchjournal.com
Received: 01-03-2019
Accepted: 03-04-2019

डॉ. मिथिलेष पाण्डेय
एसोषिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, के.ए. (पी.जी.) कालेज, कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डॉ. मिथिलेष पाण्डेय
एसोषिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, के.ए. (पी.जी.) कालेज, कासगंज, उत्तर प्रदेश, भारत

कान्तासम्मित उपदेष और महाकवि कालिदास

डॉ. मिथिलेष पाण्डेय

काव्यषास्त्रीय ग्रन्थों में प्रभुसम्मित, सुहृत्सम्मित एवं कान्तासम्मित, इन त्रिविध उपदेषों में से 'कान्तासम्मित उपदेष' को पाठकों, श्रोताओं अथवा दर्षकों पर आरोपित करना ही काव्य का परम प्रयोजन स्वीकार किया गया है।[1] प्रकृतिप्रेमी महाकवि कालिदास जी अपने विविध काव्यों के माध्यम से 'कान्तासम्मित उपदेष' रूपी काव्य की इस विषिष्ट शैली के द्वारा प्रकृतिसुन्दरी के शाष्वत सन्देष को जनसामान्य तक पहुँचाने में सर्वथा सफल सिद्ध हुए हैं।

प्रकृति की अनिर्वचनीय सुषमा से ह्रतह्रदय महाकवि कालिदास ने जहाँ एक ओर प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य में अवगाहन करके, उसके प्रति अपने ह्रदय के उल्लास को व्यक्त किया है, जहाँ प्रकृति के नानाविध क्रिया–कलापों में अपनी अन्तःप्रकृति की प्रतिच्छाया का अनुभव किया है, वहीं उससे प्राप्त होने वाले ज्वलन्त सत्य को अनावृत करने का प्रयास भी किया है। प्रकृति में सर्वदा जागरूक रहने वाली व्यवस्था, सन्तुलन एवं कालुष्य–विभंजिका शक्ति का अनुषीलन करके, महाकवि ने प्रकृति के जड़ एवं चेतन अंगों में नितान्त उदात्त एवं महनीय तथ्यों का संकेत पाया है। दिवस और रात्रि के नियमित आवर्तन, एक के उपरान्त दूसरी ऋतु के विधिबद्ध अवतरण, नित्य नवीन शोभा से उद्भासित धरती और आकाष, उदय एवम् अस्त तथा ह्रास एवं वृद्धि के क्रमिक चक्र में घूमते सूर्य, चन्द्र आदि में, कवि ने उस अनोखी निर्विरोध शृंखलाबद्ध व्यवस्था के दर्षन किए हैं, जो मनुष्य के अषान्त चित्त को शान्तिजन्य परमानन्द प्रदान करती हुयी मुक्तिमार्ग को प्रषस्त करने में सर्वथा समर्थ है।

वैदिक ऋषि सम्पूर्ण जगत् में जिस 'ऋत' (सत्य) के द्रष्टा रहे हैं, वह इसी सौषम्यमयी व्यवस्था का नामान्तर है। जो व्यवस्था और शृंखला बलपूर्वक थोपी नहीं जाती, वही मनुष्य को नियन्त्रित करती हुई मुक्ति प्रदान करती है। ऐसी व्यवस्था और निर्विरोध शृंखला एकमात्र प्रकृति में ही देखी जाती है। अतः महाकवि कालिदास ने प्रकृति में व्याप्त सुरम्य गुणों का गम्भीरता पूर्वक चिन्तन–मनन एवम् अनुषीलन करते हुए, मानव–जीवन के पथ प्रदर्षन के निमित्त अनेक आदर्षों एवं यथार्थ तत्वों का उद्घाटन किया है और प्रकृति को कान्तावत् समुपदेषिका एवं मानव–जीवन की शोधिका मानकर उसके चरणों में श्रद्धापुष्पों को विकीर्ण कर दिया हैं।

अपने स्थिर एवं शाष्वत नियमों से नियन्त्रित 'प्रकृति' मानव के सम्मुख समता, सहिष्णुता, समरसता, परोपकार–परायणता इत्यादि अनेक आदर्षों को प्रस्तुत करती है। महाकवि कालिदास की मान्यता है कि परोपकारी को ऐसा करते समय किसी प्रकार का गर्व नहीं करना चाहिए, अन्यथा करके कहने से उसकी महत्ता कम हो जाती है। इस निष्कर्ष पर पहुँचते हुए, कवि ने वृक्षों का अवलोकन किया है, जो स्वयं अपने सिर पर धूप झेलकर, शरण में आए हुए प्राणिों को अपनी छाया द्वारा सन्तापमुक्त किया करते हैं–

अनुभवति हि मूर्ध्ना पादपस्तीव्रमुष्णं।
शमयति परितापं छायया संश्रितानाम् [2]।।

अर्थात्, वृक्ष अपने षिर पर प्रचण्ड धूप को सहता है, फिर भी अपने यहाँ आये हुए लोगों को छाया देकर धूपजन्य उनके सन्ताप दूर कर देता है।

निःशब्द परोपकार–वृत्ति का प्रकृतिजन्य एक अन्य उत्कृष्ट उदाहरण महाकवि कालिदास को मेघों (बादलों) से प्राप्त हुआ है, जो निम्नलिखित है–

निःषब्दोऽपि प्रदिषसि जलं याचितष्चातकेभ्यः।
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव [3]।।

अर्थात्, हे मेघ! तुम याचना किए जाने पर, मौन रहकर भी चातकों को जलदान किया करते हो।

निष्चित ही प्रेम करने वालों के प्रति, उनके अभीष्ट कार्य को कर डालना ही, सज्जनों का प्रत्युत्तर हुआ करता है।
इसी प्रकार महाकवि कालिदास की दृष्टि में समृद्धि पाकर व्यक्ति को कभी उद्धत नहीं हो जाना चाहिए, क्योंकि प्रकृति के साम्राज्य में समृद्धि तो विनम्रता एवं परोपकार की जननी हुआ करती है, औद्धत्य की नहीं–

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमै–
र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः,
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् [4]।।

अर्थात्, वृक्ष 'फल' लग जाने पर झुक जाया करते हैं। नये जल से परिपूर्ण मेघ भी नीचे लटक आते हैं। सज्जन पुरुष समृद्धि पाकर अनुद्धत ही रहते हैं, क्योंकि ऐसा करना परोपकारियों का स्वभाव ही है।
प्रकृति–प्रषिक्षित महाकवि कालिदास जी का मन्तव्य है कि मनुष्य का संकल्प उस निम्नगामी जल की ही भाँति दृढ़ होना चाहिए, जिसकी गति को कोई विपरीत नहीं कर सकता–

कः ईप्सितार्थस्थिरनिष्चयं मनः, पयष्च निम्नाभिमुखं प्रतीपयेत् [5]।

प्रकृति से प्राप्त शाष्वत सन्देष को कान्तासम्मित उपदेष के रूप में जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत करते हुए महाकवि कालिदास जी कहते हैं कि प्रातःकाल चन्द्रमा का 'अस्त होना' और सूर्य का 'उदय होना' देखकर, मनुष्यों को जान लेना चाहिए कि 'उत्थान' और 'पतन' जीवन में लगे ही रहते हैं–

यात्येकतोऽस्तषिखरं पतिरोषधीनाम्,
आविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां,
लोको नियम्यत इवात्मदषान्तरेषु [6]।।

अर्थात्, एक ओर ओषधियों का स्वामी चन्द्रम अस्ताचल की ओर जा रहा है और दूसरी ओर अपने सारथी अरुण को आगे किए हुए, सूर्य का आविर्भाव हो रहा है। इन दो तेजस्वियों के एक साथ ही उदय और अस्त के द्वारा मानो यह संसार अपनी सुख–दुःखात्मक, दो भिन्न दषाओं के विषय में नियन्त्रित किया जा रहा है। इसीलिए आपत्ति आने पर घबराना नहीं चाहिए। सुख और दुःख समयाधीन हैं। उचित समय आने पर दुःख भी सुख में परिणत हो जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु के समाप्त हो जाने पर, जिसका जल सूर्य ने हर लिया था, वह नदी पुनः वृद्धि प्राप्त को प्राप्त करती है–

रविपीतजला तपात्यये पुनरोघेण हि युज्यते नदी [7]।

उपर्युक्त तथ्य को पुनः प्रकारान्तर से सुस्पष्ट करते हुए कालिदास जी कहते हैं कि जीवन में सुख और दुःख का चक्र तो चलता ही रहता है, किन्तु जिस प्रकार ग्रीष्म से सन्तप्त व्यक्ति को ही वृक्ष की छाया विषेष सुख प्रदान करती है, उसी प्रकार बाधाओं में दुःखमय जीवन व्यतीत करने के उपरान्त सुख का आगमन अधिक आनन्ददायक सिद्ध होता है–

यदेवोपनतं दुःखात्सुखं तद्रसवत्तरम्।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विषेषतः [8]।।

किम्बहुना, जिस प्रकार सरिता का प्रवाह विषम षिला रूपी विघ्नों से अवरुद्ध होकर सहस्र धाराओं में बहने लगता है, उसी प्रकार वह सम्मिलन, जिसमें अनेक बाधाएँ पड़ चुकी हों, अपेक्षाकृत अत्यधिक आनन्द देने वाला हो जाता है–

नद्या इव प्रवाहो विषमषिलासंकटस्खलितवेगः।
विघ्नितसमागमसुखो मनसिषयः शतगुणी भवति।।[9]

संयमी व्यक्ति के मन में उसी प्रकार क्रोध और क्षमा दोनों का वास होना चाहिए, जिस प्रकार मेघों में विद्युत् एवं जल दोनों ही रहा करते हैं–

अषनेरमृतस्य चोभयोर्वषिनष्चाम्बुधराष्च योनयः।[10]

'सज्जन' व्यक्ति उसी प्रकार दान करने के उद्देष्य से धनसंग्रह किया करते हैं, जिस प्रकार 'मेघ' पृथ्वी से जल लेकर पुनः पृथ्वी पर ही बरसा दिया करते हैं–

आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव।[11]

दान की याचना सदैव उस व्यक्ति से ही की जानी चाहिए, जो देने की सामर्थ्य रखता हो, क्योंकि शरद् के जलरहित मेघों से तो चातक भी याचना नहीं करता–

स्वस्त्यस्तु ते निर्गलिताम्बुगर्भं, शरद्घनं नार्दति चातकोऽपि।[12]

स्वभाव से शीतल 'जल' में जिस प्रकार उष्ण वस्तु का सम्पर्क कुछ काल क लिए 'उष्णता' उत्पन्न कर देता है, उसी प्रकार अपराध करने पर महात्मा व्यक्ति क्रोधावेष में कुछ काल के लिए उत्तेजित हो जाते हैं, अन्यथा वे स्वभाव से क्षमाषील ही होते हैं–

स चानुनीतः प्रणतेन पश्चान्मया महर्षिर्मृदुतामगच्छत्।
उष्णत्वमग्न्यातपसंप्रपोगात्छैत्यं हि यत् सा प्रकृतिर्जलस्य।।[13]

अर्थात्, गन्धर्वराज प्रियदर्षन का पुत्र 'प्रियम्वद' महाराज 'अज' से कहता है कि मेरे विनम्र निवेदन करने पर (क्रुद्ध हुए मतंग ऋषि) बाद में दयार्द्र हो गए, जैसे अग्नि एवम् आतप के संयोग से जल में क्षणिक उष्णता आ जाती है, अन्यथा शीतलता तो जल का स्वभाव ही है।
कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार ईंधन को हिलाने–डुलाने से अग्नि और अधिक प्रज्ज्वलित हो जाती है और छेड़ने पर सर्प फण उठा कर क्रोधित हो जाता है, ठीक उसी प्रकार प्रायः क्रोध दिलाने पर व्यक्ति अपनी महिमा के गर्व से गर्वित हो जाता है–

ज्वलति चलितेन्धनोऽग्निर्विप्रकृतः पन्नग फणां कुरुते।
प्रायः स्वं महिमानं क्षोभात् प्रतिपद्यते हि जनः।।[14]

महाकवि कालिदास के मत में यह आवष्यक नहीं है कि महान् जनों के समक्ष, तुच्छ जनों का कोई महत्व ही नहीं होता। अनेक कार्य बड़ों की अपेक्षा छोटों द्वारा वैसे ही सरलता से सम्पन्न हो जाया करते हैं, जैसे रात्रि के जिस अन्धकार को दूर करने में 'सूर्य' भी सफल नहीं होता, उसे 'चन्द्रमा' अनायास ही दूर कर देता है–

उच्छेत्तुं प्रभवति यन्न सप्तसप्तिस्तन्नैषं तिमिरमपाकरोति चन्द्रः।।[15]

महापुरुषों की संयमवृत्ति की ओर संकेत करते हुए महाकवि कालिदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार प्रकृति में परपरिग्रहवृत्ति

नहीं होती, उसी प्रकार आत्मसंयमी व्यक्तियों की वृत्ति भी परपरिग्रह पराङ्मुखी होती है–

कुमुदान्येव शषांकः सविता बोधयति पंकजान्येव।
वषिनां हि परपरिग्रह–संष्लेषपराङ्मुखी वृत्तिः।।[16]

अर्थात्, चन्द्रमा केवल कुमुदिनियों को और सूर्य केवल कमलों को ही विकसित करता है। निष्चित ही आत्मसंयमी व्यक्तियों की वृत्ति, परपरिग्रह पराङ्मुखी हुआ करती है।
पर्वत की ऊँची चोटियों पर जिस प्रकार ज्योत्स्ना फैल जाती है और निचली घाटियों में अन्धकार रहता है, उसी प्रकार उच्चाषय व्यक्ति के लिए विधाता गुणयोग एवं नीच व्यक्ति के लिए दोष प्रदान करता है–

उन्नतेषु शषिनः प्रभा स्थिता निम्नसंश्रयपरं निषातमः।
नूनमात्मसदृषी प्रकल्पिता वेधसा हि गुणदोषयोर्गतिः।।[17]

प्रकृति से प्राप्त षिक्षा को महाकवि कालिदास जी 'काव्यषैली' अर्थात् कान्तासम्मित उपदेष का रूप देते हुए कहते हैं कि जलभरित 'मेघ' को उड़ा ले जाने में पवन असमर्थ होता है, क्योंकि पूर्णता (गुणादि की) सदैव गौरव का कारण बनती है और रिक्तता (ओछापन) लघुता का कारण बनता है–

अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां।
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।।[18]

इस प्रकार महाकवि कालिदास की दृष्टि में 'प्रकृति' शाष्वत उपदेषों का भाण्डागार है और उनकी अन्तर्दृष्टि ने प्रकृति में आध्यात्मिक तथ्यों के संकेत प्राप्त किए हैं। प्रकृति को प्रधानतः प्रेमी की स्निग्ध दृष्टि से देखने वाले कालिदास ने 'प्रकृति' को प्रेयसी के अतिरिक्त शासिका के सम्मान्य पद पर स्थापित करके उसके माध्यम से अनेक तथ्यों का चयन किया है, तदुपरान्त अपनी लावण्यमयी काव्यात्मक शैली से उसे सर्वग्राह्य रमणीय स्वरूप प्रदान करके 'कान्तासम्मित उपदेष' के रूप में लोक के समक्ष उपस्थापित किया है। उनकी मान्यता है कि 'स्व' और 'पर' के संघर्ष से ऊपर उठकर यदि मनुष्य प्रकृति के स्वरूप को प्राप्त कर ले, तो वह अपेक्षाकृत अधिक निर्दोष, सुखी एवं शांत जीवन व्यतीत कर सकता है।
अतः आज के इस भूमंडलीकरण, पर्यावरणप्रदूषण, अविवेकपूर्ण प्राकृतिक दोहन, अनन्तपरिग्रह–प्रवृत्ति तथा प्रेयमार्ग की लोलुपता के इस युग में हमें निष्चित ही महाकवि कालिदास के काव्यों, महाकाव्यों एवं नाटकों के अध्ययन, मनन, निदिध्यासन तथा अनुकरण की आवष्यकता है।

सन्दर्भ

1. काव्यप्रकाष ।। 01.02 ।।
2. अभिज्ञानषाकुन्तलम् ।। 05.07 ।।
3. मेघदूतम् ।। 02.57 ।।
4. अभिज्ञानषाकुन्तलम् ।। 05.12 ।।
5. कुमारसम्भवम् ।। 05.05 ।।
6. अभिज्ञानषाकुन्तलम् ।। 04.02 ।।
7. कुमारसम्भवम् ।। 04.44 ।।
8. विक्रमोर्वषीयम् ।। 03.31 ।।
9. विक्रमोर्वषीयम् ।। 03.08 ।।
10. कुमारसम्भवम् ।। 04.43 ।।
11. रघुवंषम् ।। 04.86 ।।
12. रघुवंषम् ।। 05.17 ।।
13. रघुवंषम् ।। 05.54 ।।
14. अभिज्ञानषाकुन्तलम् ।। 06.31 ।।
15. अभिज्ञानषाकुन्तलम् ।। 06.30 ।।
16. अभिज्ञानषाकुन्तलम् ।। 05.28 ।।
17. कुमारसम्भवम् ।। 08.66 ।।
18. मेघदूतम् ।। 01.21 ।।